दलित साहित्य: चिंतन के फुटप्रिंट

(दलित साहित्य (वार्षिकी) के संपादकीय)

डॉ. जयप्रकाश कर्दम

दलित साहित्य: चिंतन के फुटप्रिंट

(दलित साहित्य (वार्षिकी) के संपादकीय)

डॉ. जयप्रकाश कर्दम

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: मार्च, 2026

© डॉ. जयप्रकाश कर्दम

अनुक्रम

साहित्य के लोकतांत्रीकरण की आवश्यकता	4
दलित साहित्य की रीढ़	22
दलित साहित्य : पत्रिका और संगठन की पृष्ठभूमि	32
दलित साहित्य लेखन: प्रतिबद्धता का प्रश्न	44
दलित साहित्य में धर्म का प्रश्न	73
मीडिया का अलोकतांत्रिक चरित्र	86
प्रेमचंद: विरोध और विरासत	94
जर्मनी में दलित साहित्य और विमर्श	111
पाकिस्तान में दलित	125
दलित: मनुष्य नहीं स्लमडॉग	140
भ्रष्टाचार का मूल-आधार जाति-व्यवस्था	157
साहित्य का सांस्कृतिक दाय बनाम ओ बी सी साहित्य	172
दलित साहित्य बनाम लाँछनावाद	209
दलित आलोचना की दिशा	231
स्त्री विमर्श और पुरुषसत्ता	251
अंबेडकरवाद, रोहित वेमुला और राष्ट्रवाद	268

दलित बनाम ब्राह्मण आरक्षण 287

बहुजन समाज और राजनीति की दिशा 313

बंगाल विभाजन और दलित 337

साहित्य महोत्सवों की भीड़ में दलित साहित्य महोत्सव 363

साहित्य के लोकतांत्रीकरण की आवश्यकता

अपनी पत्रिका 'संचेतना' (त्रैमासिक) के मार्च- जून 98 व सितम्बर-दिसम्बर, 98 अंकों में हिन्दी साहित्य में व्याप्त माफियागीरी पर खुली बहस चलाकर डॉ. महीपसिंह ने एक बड़ी पहल की। इस चर्चा में अनेक साहित्यकारों की बेबाक टिप्पणियां आयी हैं जिनका निष्कर्ष यह है कि हिन्दी साहित्य कुछ डॉन और माफिया लोगों के शिकंजे में है। सारे पुरस्कारों की निर्णायक मंडलियों में थोड़े बहुत हेर-फेर के साथ ये ही लोग होते हैं, और अपने इर्द-गिर्द के लोगों को ही पुरस्कार दिलवाते हैं। इसी तरह फैलोशिप, स्कॉलरशिप, पुस्तक प्रकाशन हेतु अनुदान तथा पुस्तक खरीद समितियों में वे ही होते हैं। सरकारी खर्च पर विदेश यात्रा पर जाने का लाभ भी उनको ही मिलता है जिनको ये माफिया चाहते हैं। माफिया और डॉन के अलावा दूसरा वर्ग नटवरलालों का है जिनका साहित्यिक कर्म कुछ नहीं होता किन्तु वे जोड़-तोड़ और तिकड़मबाजी के उस्ताद होते हैं। अपनी तिकड़मबाजी के बल पर ये नटवरलाल बड़े-बड़े पुरस्कार और सम्मान सहज ही पा जाते हैं, बड़ी-बड़ी समितियों के सदस्य या अध्यक्ष तक बन जाते हैं, क्योंकि साहित्य के डॉन और माफियाओं के साथ भी इनके संबंध होते हैं और सत्ता के गलियारों तक में भी हर रंग में रंग जाने और हर अवसर का दोहन करने में माहिर इन

नटवरलालों के न कोई सिद्धांत होते हैं, न नैतिकता, न धर्म । साहित्य में ऐसे नटवरलालों की कमी नहीं है।

माफिया लोग चाटुकारिता पसंद हैं। जो उनकी चाटुकारिता करता है उस पर उनकी कृपा-दृष्टि रहती है और जो चाटुकारिता नहीं करता है उसके प्रति या तो भृकुटि तनी रहती है या फिर उपेक्षा भाव रहता है। साहित्य में हर वाद, हर धारा के प्रवर्तक, संवाहक और मसीहा वे होना चाहते हैं और उनके चाटुकार ऐसा प्रचारित करते हैं। वे जिस किसी भी समिति में होते हैं उनकी नज़र केवल अपने चाटुकार भक्तों पर होती है और पद पुरस्कार, फैलोशिप या अन्य लाभ पाने के आकांक्षी लोग इन माफियाओं की चाटुकारिता करते हैं। उनके आगे-पीछे घूमते हैं, उनकी चिलम भरते हैं। जायज नाजायज उनके हर कदम और कथन का समर्थन और वकालत करते हैं। ये चाटुकार वही लिखते और बोलते हैं जो इनके आका इनसे बुलवाना या लिखवाना चाहते हैं या जो उन्हें अच्छा लगता है। चाटुकारिता के चलते साहित्य की यह हालत है कि प्रशंसा या वाह-वाही सही दृष्टिकोण का पर्याय हो गयी है और स्वस्थ समालोचना विरोध या विद्वेष का । आकाओं की चाटुकारिता के समक्ष उनके बड़े से बड़े सिद्धांत दण्डवत हो जाते हैं। औचित्य, अनौचित्य या सिद्धान्त और नैतिकता का आकाओं की चाटुकारिता के समक्ष इनके लिए कोई मतलब नही होता। अपने आका की प्रशंसा में कही गयी हर बात ही सर्वाधिक औचित्यपूर्ण और तर्कसंगत होती है। उनके हर भाषण